उपसंहार

द्वितीय विश्वयुद्ध ने पाश्चात्य और भारतीय जीवन पद्धति पर प्रभाव डाला। युद्ध की इस विभीषिका ने मानव को अपने अस्तित्व के बारे में सोचने के लिए बाध्य किया। परिणमास्वरूप, अस्तित्ववादी चिंतनधारा उभर उठी। आधुनिक युग में, मानवी जीवन में तान-तनाव बढ़ते गये। पारिवारिक संबंधों में तनाव गहराई के साथ जुडने लगे। यह सामाजिक और मानसिक स्थिति हिन्दी उपन्यासकारों के नजरों से नहीं छूटी। परिणामस्वरूप साठोत्तरी कालखंड में अस्तित्ववाद से प्रभावित हिन्दी उपन्यास लिखे जाने लगे।

अस्तित्ववाद युरोप की एक आधुनिक चिंतनधारा है। इस धारा का मूलस्त्रोत हम जर्मन दार्शनिक हैडेगर और डेनिशचिंतक कीर्केगार्द में पा सकते हैं। यह साहित्यधारा मानवीजीवन को निरर्थक मानती है। तर्क को त्याग देती है। ईश्वर में आस्था नहीं मानती। निरर्थक मानवीजीवन को सार्थक बनाती है। `क्षण` का महत्व विशद करती है। मानवी स्वातंत्र्य का समर्थन करके मानवी जीवन के जीवित संदर्भों को तलाशती है। जीवन की समस्याओं पर यह चिंतन करती है। यह चिंतनधारा मानव को केन्द्रित करके चलती है। यह एक धर्मनिरपेक्ष चिंतनधारा है।

इस विचारधारा का आरंभ मनुष्य की निरूपाय स्थिति से होती है। मृत्यु अस्तित्ववादी धारा की बड़ी चुनौती है। इस धारा में आस्तिक अस्तित्ववादी चिंतकों का एक वर्ग रहा है, जिसने मानवी जीवन को ईश्वर से जोडा है। कीर्केगार्द और जास्पर्स इस धारा के प्रमुख प्रतिनिधी चिंतक माने जाते हैं। इस चिंतनधारा का दूसरा वर्ग निरीश्वरवादी है, इस वर्ग का प्रतिनिधीत्व सार्त्र एवं नीत्शे करते हैं।

यह चिंतनधारा परंपरागत मूल्यों को निष्प्राण समझकर सशक्त मानवीय मूल्यों की स्थापना करती है। अस्तित्ववादी लेखक काल्पनिक साहित्य के निर्माण में रूचि नहीं रखतें। जीवन के दैनंदिन संघर्षों से उनका साहित्य आबद्ध रहता है। मानव-मुक्ति के ये साहित्यिक प्रबल पक्षधर होते हैं। साठोत्तरी हिन्दी का अस्तित्ववाद से प्रभावित उपन्यास साहित्य इन सभी सूत्रों को साकार करता है।

अस्तित्ववादी विचारधारा को प्रवाहित करने में सोरेन कीर्केगार्द, जास्पर्स, मार्टिन हैडेगर, ग्रैब्रियल मार्शल, जां-पाल, सार्त्र, फ्रेंच काफ्का, अल्बेट कामू, नीत्शे, दॉस्तोव्हस्की आदि लेखकों का योगदान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इनके चिंतन से ही आज के अस्तित्ववाद का निर्माण हुआ। इन विदेशी लेखकों की इस

चिंतनधारा के अनुसार भारतीय संस्कृति और परिवेश में जहाँ अनुकूलता रही, वहाँ पर हिन्दी के उपन्यास लेखकों ने अस्तित्ववाद से प्रभावित उपन्यास लिखें।

सन साठ के पश्चात् डॉ. देवराज उपाध्याय के `अजय की डायरी`,अज्ञेय के `अपने-अपने अजनबी`, मोहन राकेश के `अंधेरे बंद कमरें`, `अंतराल`, निर्मल वर्मा के `लाल टीन की छत`, `वे दिन`, `एक चिथड़ा सुख` सुरेश सिन्हा के `एक और अजनबी`, रमेश बक्षी के `अठारह सुरज के पौधे`, लक्ष्मीकान्त वर्मा के `टेरकोटा`, `एक कटी हुआी जिन्दगी : एक कटा हुआ कागज`, राजकमल चौधरी के `मछली मरी हुआी`, उषा प्रियंवदा के `पचपन खंभे लाल दीवारें`, रूकोगी नहीं, ---- राधिका ?` ममता कालिया के `नरक-दर-नरक`, सुदर्शन नारंग के `अपने विरूद्ध`, शैलेश मटियानी के `आकाश कितना अनंत है?` आदि उपन्यासों में अस्तित्ववाद से प्रभावित प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। इन उपन्यासों के पात्र पाश्चात्य सभ्यता में डूबे हुअे भारतीय पात्र हैं। वे कभी पाश्चात्य परिवेश में जाकर वहाँ की संस्कृति से और समाजजीवन से खुद को फिट नहीं कर पातें। इस स्थिति में वे अलगाव, अजनबीपन, संत्रास, घुटन और ऊबकाई से ग्रस्त रहते हैं। `अजय की डायरी` का अजय, `वे दिन` का मैं अलगाव की पीडा को प्राप्त करते हैं।

मैंने प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध के लिए डॉ. देवराज उपाध्याय लिखित `अजय की डायरी`, अज्ञेय लिखित `अपने-अपने अजनबी`, निर्मल वर्मा लिखित `लाल टीन की छत` को चुना है। इन तीन उपन्यासों को आलोच्य उपन्यास बनाने के पीछे का कारण यह है कि, इनमें से प्रथम उपन्यास `अजय की डायरी` का परिवेश कश्मीर, बी. नगर और अमरीका है। अज्ञेय के `अपने-अपने अजनबी` का परिवेश एक अनाम बर्फीला प्रदेश है, तो `लाल टीन का छत` का परिवेश एक पहाडी प्रदेश है। प्रादेशिक विभिन्नता के नाम पर इन पात्रों में जगे अस्तित्ववादी दर्शन को गहराई से और सूक्ष्मता से तलाश ने का प्रयत्न किया है।

आलोच्य तीन उपन्यासों के पात्रों में भी अलगाव तथा विभिन्नता नजर आती है। `अजय की डायरी` के पात्र अजय, दीपिका, शीला, हेम हैं जो भारतीय होकर भी भारतीय सभ्यता का अनुकरण करना चाहते हैं। दीपिका द्वारा स्वातंत्र्य के रूप में अमरीका की `डेटिड` की प्रथा का उदाहरण प्रस्तुत करना, इसका अच्छा उदाहरण है। इससे भारतीय नारियों में `पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता` के अनुकरण के कारण स्वतंत्रता के बारे में उत्पन्न दंभ का परिचय मिलता है।

`अपने-अपने अजनबी` में सेल्मा पाश्चात्य विचारधारा का तो योके पौरात्य विचारधारा का प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्र हैं। ये पात्र अपने अलग-अलग दृष्टिकोणों के बीच बंधे जाने के कारण एक साथ

रहकर भी एक दूसरे से अलगाव की पीडा महसूस कर रहें हैं। इस उपन्यास के अन्य पात्र जगन्नाथन् , फोटोग्राफर, यान आदि हैं जो अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए आत्मकेन्द्रित बनते हैं। अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं। अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए दूसरे के मार्ग में रोडे अटकाते हैं। अस्तित्वरक्षा के लिए प्रारंभ में मृत्यु से डरकर मृत्यु का विरोध करनेवाली योके अंत में मृत्यु स्वीकारती है। इन पात्रों के माध्यम से अस्तित्ववाद का मृत्युबोध, क्षणवाद तथा अन्य सूत्र भी प्रभावी रूप में उभर उठे हैं। `लाल टीन की छत` में एक युवावस्था में पदार्पण करनेवाली लडकी की मानसिकता से उभरी हुओ अस्तित्ववाद की प्रवृत्तियों पर प्रभावी ढ़ंग से चिंतन किया है।

प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध में हमने अस्तित्ववाद का स्वरूप, अस्तित्ववाद की परिभाषाएँ, अस्तित्ववाद की प्रवृत्तियाँ, भारतीय साहित्य और अस्तित्ववादी धारा आदि के सहारे यह तलाश करने का प्रयत्न किया है कि आज के भौतिक संकटों से उत्पन्न पीडा से अस्तित्ववाद का निर्माण हो चुका है। पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों की परिभाषाओं में परिवेशजन्य एवं सांस्कृतिक -सामाजिक स्थितियों के अनुरूप कई विभिन्न दृष्टिकोण उभर उठे हैं। अस्तित्ववाद एक ऐसी चिंतनधारा है, जिसके सामने मनुष्य असहाय है। इसमें मनुष्यजाति की स्वतंत्रता पर बल दिया गया है। इस धारा में निरीश्वरवादिता पर बल दिया है, परंतु भारतीय परिवेश के पात्र इस वाद को लेकर द्वंद्वात्मक स्थिति में रहते हैं। शुरू में कट्टर नीरीश्वरवादी, अंत में ईश्वरवादी के रूप में बदलते हैं। `अजय की डायरी` का अजय इसका अच्छा उदाहरण है।

इस लघु-शोध-प्रबंध में अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों पर गहराई से चिंतन करके अलोच्य उपन्यासों में ये प्रवृत्तियाँ कहाँ-कहाँ पर मिलती है, इस पर सोचा है। अस्तित्ववाद में अस्तित्व के लिए संघर्ष, उदासीनता, `स्व` के प्रति चेतना, जीवन की मूल समस्याओं के खिलाफ विद्रोह, यांत्रिकीकरण, पूँजीवाद का विरोध, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवेश में अपनी स्थिति और गति की तलाश, असुरक्षितता तथा अलगाव की मन:स्थिति , मानवी समस्याओं का नये सिरे से चिंतन, मानवीय संकटबोध का विश्लेषण, जीवित वैचारिक संघर्ष, जीवन की सार्थकता के बारे में आवेग, मानवीय मूल्यों पर बल, सर्जनशील मानवीवृत्ति का प्रस्तुतीकरण, जीवन की निरर्थकता को सार्थक बनाने की ललक, मनुष्य का अकेलापन, अजनबीपन, मृत्युबोध, अशांति, आत्मनिर्वासन, विषमता आदि पर चिंतन, ऊबकाई, टूटन, क्षण के महत्व का विश्लेषण आदि कई अस्तित्ववाद की प्रवृत्तियों पर गहराई से चिंतन करके भारतीय परिवेश के अनुकूल इन प्रवृत्तियों का आलोच्य हिन्दी उपन्यासों में कहाँ तक सफलता से प्रयोग हुआ है, इस पर सोचा है। हमने इस लघु-शोध-प्रबंध में अस्तित्ववाद के प्रभाव से मानवी जीवन में निर्मित अस्तित्वरक्षा की समस्या, अकेलेपन की समस्या, जीवन के निरर्थकता की समस्या, ईश्वर -

अनीश्वर अर्थात आस्तिक-नास्तिक की समस्या, स्वतंत्रता की समस्या, अलगाव की समस्या, अजनबीन की समस्या, ऊबकाई एवं संत्रास की समस्या आदि समस्याओं पर चिंतन करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आधुनिक युग में विकसित देशों तथा विकसनशील देशों में औद्योगिकरण के परिणामस्वरूप इन समस्याओं का निर्माण हो चुका है। यांत्रिकीकरण के बढ़ते प्रभाव की चपेट में मनुष्यजीवन खतरे की स्थिति को प्राप्त कर चुका है। इन समस्याओं के समाधान के लिए आत्मशांति की आवश्यकता है, जिसपर `अजय की डायरी` में अजय के माध्यम से संकेत दिया गया है। आलोच्य उपन्यासों में उपन्यास लेखकों ने समस्याओं का केवल प्रस्तुतीकरण ही नहीं किया है, उसका हल ढूँढने तथा निराकरण करने का प्रयत्न किया है।

अजय समाज में अपना सार्थक अस्तित्व पाने में असमर्थ होता है तब उसे जीवन अधूरा लगने लगता है। अजय समाज में जिन मूल्यों को महत्व देता है, पश्चिम और पूरब के जीवन में समान तौर पर वह इन मूल्यों की रक्षा चाहता है। उसे बड़ा खेद है कि पश्चिम हो या पूरब, दोनों तरफ भौतिकता या दूषित मानवता से मानवमूल्यों का ऱ्हास होने लगा है। अजय नास्तिक है, लेकिन स्वयं मनुष्य द्वारा बनायी गयी मूल्यनिहित मानवता में आस्था रखता है। यहाँ अजय सार्त्र के दर्शन का समर्थक है, जो ईश्वर को नहीं मानता, लेकिन मनुष्यद्वारा निर्मित मानवता को मानता है। अजय बौद्ध और जैन मत से प्रभावित लगता है, जो साधु-संतों द्वारा निर्मित मानवता को मानते हैं। उनके लिए ईश्वर को मनुष्यजीवन में कोई स्थान नहीं। आगे हम देखते हैं कि, अजय हेम के प्यार में जब अपना `अस्तित्व` पाने की आशा देखता है, तो वह हेम की तरह आस्तिक बन जाता है। अजय नैतिक-अनैतिकता को मानता है, जो मूल्यों से गहरा संबंध रखती हैं। उसे पता है कि समाज की दृष्टि मे उसका और हेम का प्यार अनैतिक, मूल्यहीन है, शायद वह इस बात को मानता है तभी तो हेम के प्यार से अपने आपको बचाना चाहता है। स्वयं को असमर्थ पाकर इसके लिए ईश्वर की भी प्रार्थना करता है। इसका मतलब है कि, अपने मूल्यों की रक्षा के लिए वह आस्तिक बनने लगता है।

भारतीय समाज में विवाहित किसी परायी नारी से संबंध रखना `पाप` समझा जाता है, लेकिन अजय इसे सिर्फ सामाजिक खोखली रूढ़ि मानता है। उसके अनुसार `पाप` का मतलब है, दूसरों को कष्ट देना। यही कारण है कि शिकागो की लडकी से अपना संबंध या क्लारा से अपने आकर्षण को वह `पाप` नहीं समझता। यही कारण है कि, हेम का प्यार वह अंत तक पाना चाहता है। उसका हेम से `तुम्हारी प्राण-प्रकिया का एक भूला हुआ स्पंदन` यह कहना इसी बात का प्रमाण है। यहाँ पर अजय अमरीका की भौतिकता की तरफ आकर्षित हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अजय का व्यक्तित्व मानसिक द्वंद्व से पीडित है। उसका द्वंद्व भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद के बीच है। इस द्वंद्व में उसका मूल्य-विघटन विरोधी संघर्ष महत्वपूर्ण है। इस दौरान उसकी विवशता आज के अस्तित्ववादियों की विवशता है। उसका मूल्यविघटन विरोधी वैयक्तिक संघर्ष उसे सार्त्र एवं आल्वेयर कामू से मिलता है, तो उसका बीच में उभरा ईश्वरवाद उसे कार्ल जास्पर्स तथा मार्शल से मिलता है, जो अमानवीय संकट से बचाव ईश्वरद्वारा मानते हैं। मानवी मूल्य एवं उससे बनी मानवीयता के विचारों से अजय कीर्केगार्द एवं फ्रेडरिक नीत्शे का समर्थक बन जाता है।

अजय के साथ इस उपन्यास के पात्र दीपिका और शीला, दोनों घोर नास्तिक हैं, एवं दीपिका स्वतंत्रता के मामले में सार्त्र की समर्थक है। अस्तित्ववादियों की तरह `मृत्यु ` को वह मानवजीवन का अंतिम सत्य मानकर चलती है। शीला, पी. साहब मूल्य-विघटन के प्रतिनिधी पात्र हैं तो डॉ. मदन अजय के विचारों के समर्थक हैं। निगम यह पात्र स्वच्छंद एवं मस्तमौला जीवन जीनेवाला पात्र है। अस्तित्ववादी दर्शन की वैचारिकता ज्यादहतर अजय,दीपिका, हेम, डॉ. मदन इन पात्रों में ही मिलती है।

मूल्य-विघटन द्वितीय विशयुद्ध की देन है। अजय मूल्यों का रक्षक है। मूल्य उसके लिए जीवन दर्शन है। मूल्य विषयी अजय के विचार उसे साधु संगति में बिठलाते हैं, परंतु संतचरित्र की तटस्थता उसमें नहीं है। ये विचार प्लेटो से प्रभावित लगते हैं। अजय का निरीश्वरवाद बौद्ध-दर्शन, जैन मत के सन्निकट उसे पहुँचाता है। अजय का नास्तिक होकर भी अंत में आस्तिक बनना, अजय का यह बदलाव भारतीय परिवेश की उपज है। `अजय की डायरी` साठोत्तरी कालखंड का अस्तित्ववादी दर्शन के मोड पर से गुजरनेवाला एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। यहाँ मूल्य विघटन के खिलाफ संघर्ष है। अजय मूल्य-रक्षा का पक्षधर है। अजय और शीला का जीवन की ओर देखने का विभिन्न दृष्टिकोण होने के कारण इन दोनों के दांपत्य जीवन में अलगाव और अजनबीपन आया है। शीला भौतिकता की समर्थक है तो अजय आत्मशांति का समर्थन करता है। दोनों के इन अलग दृष्टिकोणों के कारण ये दानों एक दूसरे से कटते जा रहे हैं। अकेलेपन को काटने के लिए अजय का हेम की तरफ आकृष्ट होना, अजय का दीवास्वप्नों में खो जाना, अपने अकेलेपन का सहारा खोजने की ललक अजय में उत्पन्न हो जाना आदि के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि अजय का यह अकेलापन कुछ हद तक सामाजिक वातावरण और कुछ हद तक उसके मनोविज्ञान का परिणाम लगता है। अजय अपने दुर्भाग्य के साथी के तलाश में है। कश्मीर से वापस लौटने पर कश्मीर की तुलना में बी. नगर का कमरा उसमें अजनबीपन की पीडा को उभारता है। रिसर्च के लिए अमरिका जानेवाले अजय को पत्नी शीला की अनुपस्थिति कचोटने लगती है, जिससे वह

अजनबी बनता है। अजय का यह अजनबीपन यांत्रिक सभ्यता की देन लगता है। वैचारिक मत-भिन्नताओं के कारण अजय-शीला में अलगाव उभरता है। यौन-संबंधों में भी दूरी निर्माण होती है। अजय को पत्नी के साथ यौन संबंध अनैतिक लगते हैं, क्योंकि वह केवल शरीरसुख के लिए अजय को चाहती है। इन संबंधों में अजय की हार शीला के दंभ को उभारती है। परिणामस्वरूप, दांपत्यजीवन में तनाव बढते हैं। घर-बाहर के संबंध पति -पत्नी के तनाव में बढ़ौत्री करते हैं। हेम के कारण अजय -शीला के जीवन में तनाव बढ़ते हैं। यहाँ अजय, शीला, हेम, दीपिका सभी स्वतंत्रता को चाहते हैं। दीपिका और हेम की स्वतंत्रता अहंवादिता के दर्शन करा देती है।

प्रस्तुत उपन्यास के पात्र मृत्यु-विषयक विचार भी करते हैं। दीपिका मृत्यु को सहज रूप में देखना चाहती है। दीपिका के मृत्यु-विषयक विचार सार्त्र और कामू के विचारों से प्रभावित लगते हैं। `इला` मृत्यु से डरती है। उसका मृत्यु-विषयक डर `अपने-अपने अजनबी` की योके के डर जैसा लगता है। `पांडे` को मृत्यु का भय आतंकित नहीं करता है। वह मृत्यु को जीवन की अनिवार्यता मानता है। अजय मृत्यु को मानवजीवन की अंतिम परिणिती नहीं मानता है। वह मृत्यु के बाद भी मानवचेतना को अमर मानता है। अपने विचारों की पुष्टि के लिए वह `ताज` का उदाहरण देता है। अजय के विचार हैडेगर के विचारों से प्रभावित लगते हैं।

`अपने-अपने अजनबी` अज्ञेयजी द्वारा लिखा गया मृत्युसाक्षात्कार का प्रथम उपन्यास है। इसे अस्तित्ववाद से प्रभावित हिन्दी उपन्यासों में प्रथम स्थान देना उचित लगता है। यह उपन्यास तीन खण्डों में विभाजित है। इसमें सेल्मा और योके के मृत्यु-विषयक अलग-अलग दृष्टिकोण उभर उठे हैं। इसमें एक बर्फीले आंचल में सेल्मा का एक कठघरे संकटापन्न स्थिति में रहना, सेल्मा , उसका प्रेमी यान और फोटोग्राफर का अपने अस्तित्व के लिए जीवन-संघर्ष करना, अंत में योके का स्वयं मृत्यु को स्वीकार करना इन तीन घटनाओं पर आधारित इस उपन्यास का रचना-संसार खडा है। इस उपन्यास द्वारा पूर्व और पश्चिम में स्थित जीवनविषयक दृष्टिकोण को साकार करना लेखक का उद्देश्य लगता है। यहाँ योके-सेल्मा के माध्यम से मृत्यु से साक्षात्कार दिखाया है।

बर्फ से दबे कठघरे में सेल्मा और योके का अकेलापन, दोनों के बीच का अलगाव, सेल्मा का कैंसरग्रस्त होने से मृत्यु को वरण करने का भाव, अकेलेपन में योके का आगमन सेल्मा के लिए ईश्वर की मर्जी लगता है। योके को सेल्मा का साथ भयग्रस्त लगता है। वह उसे छोडकर अकेली रहना चाहती है। योके-सेल्मा में अजनबीपन बढ़ने लगता है। सेल्मा दोनों के बीच के अजनबीपन को मिटाने के लिए योके को पूरा अतीत बताती है। योके अपने प्रेमी पॉल द्वारा धोखा खाकर अधिक अजनबी बनती है। जर्मन सैनिकों के बलात्कार से तो वह

अधिक नाराज होकर अजनबी जगन्नाथन् को अपना बनाती है। यहाँ आधुनिक जीवन के अजनबीपन की पीडा को वाणी मिली है। कैंसरपीडित सेल्मा और योके का जीवन विषयक दृष्टिकोण भिन्न लगता है। सेल्मा मृत्यु के इंतजार में जीवन को निरर्थक मानती है। योके प्रारंभ में मृत्यु को स्वीकार नहीं करती परंतु जर्मन सैनिकों के बलात्कार से घायल होकर पीडा से छुटकारा पाने के लिए मृत्यु का वरण करती है। यहाँ निरर्थक जीवन को सार्थक बनानेवाली मृत्यु है, ऐसा अज्ञेयजीका मत स्पष्ट होता है। मृत्यु जीवन को रसमयी बनाता है। यह लेखक की धारणा है। यहाँ अज्ञेय मानवतावादी अस्तित्ववादियों के विरोधी लगते हैं। सेल्मा ईश्वर की सत्ता को मानती है, योके नास्तिक है। योके के माध्यम से सार्त्र का दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। योके के ये विचार हैडेगर, सार्त्र के विचारों से मिलते हैं। अंतिम क्षणों में योके का दृष्टिकोण कीर्केगार्द, जास्पर्स जैसे दार्शनिकों के मत का समर्थन करता है। मृत्यु से जुझती योके अंत में जगन्नाथन् को चुनकर ईश्वर का स्मरण करती है।

इस उपन्यास का आरंभ मृत्यु के आतंक से होता है। यहाँ का हर पात्र अस्तित्व के लिए संघर्ष करता है। बाढ़ का पानी पीकर जीने की कोशिश में पेचिश की बीमारी से फोटोग्राफर की आत्महत्या, फोटोग्राफर की जलती दुकान की आँच पर मांस पकाकर भूख मिटाने की यान की प्रवृत्ति, अपने अस्तित्वरक्षा के लिए स्वार्थवश सेल्मा का बाढ़ग्रस्त लोगों को लूटना, सेल्मा का गला घोंटकर योके का मृत्यु भय से छुटकारा पाना ये सारी घटनाएँ इन पात्रों के अस्तित्व के लिए संघर्ष की गवाह है। स्पष्ट है कि, लेखक ने यहाँ भारतीय और पाश्चात्य जीवनविषयक दृष्टिकोण अपने पात्रों पर लादे हैं। भारतीय लोगों में मृत्यु-विषयक जिज्ञासा न होने के कारण लेखक ने योके- सेल्मा जैसे विदेशी पात्र चुने हैं। मृत्यु संकट को विश्वसनीय बनाने के लिए बर्फीले प्रदेश की कल्पना की है। सामान्य नारी सेल्मा ओर बुद्धीजीवी नारी योके के बीच की टकराहट को दिखाया है।

योके पर `जर्मन सैनिकों द्वारा बलात्कार होना` यह घटना पाश्चात्य देशों के युद्ध की विभीषिका के दर्शन की पृष्टभूमि को ताजा कर देती है। यहाँ पर योके का अस्तित्व संकट के घेरे में आ जाता है और उसमें आत्मनिर्वासन की भावना जाग जाती है। सेल्मा ने जिस `मृत्यु` को शांत भाव से स्वीकार किया था, योके इस संदर्भ में विद्रोही दिखायी देती है। अस्तित्ववादियों की `वरण की स्वतंत्रता` की भावना योके में तीव्र दिखायी देती है। योके का विद्रोह `बलात्कार` करनेवाले अमानवीय प्रवृत्ति के खिलाफ है। जगन्नाथन् जैसे अच्छे आदमी को ढूँढकर अपने `मृत्यु` को सार्थक बनाने की बात उसकी मानवीयता, मानतवा के प्रति आस्था के प्रकट करती है। `मृत्यु` जैसे जीवन के अंतिम सत्य को दोनों ने स्वीकार किया, लेकिन `स्वीकार` करने की दोनों की पद्धतियाँ

अलग हैं। इसका कारण है, दोनों के व्यक्तित्वों का विकास दो अलग-अलग विदेशी संस्कृति के वातावरण में हुआ है।

योके और सेल्मा जैसे विदेशी पात्रों के बाद जगन्नाथन् जैसे एक और प्रमुख अंतिम पात्र को चुनना अज्ञेय का यह उद्देश्य हो सकता है कि युद्ध की विध्वसंता के दायरे में भारतीय संस्कृति ही मनुष्यजाति की सुरक्षा का सहारा हो सकती है। `अपने-अपने अजनबी` अस्तित्ववाद से प्रभावित हिन्दी का पहला उपन्यास माना गया है।

आलोच्य उपन्यासों में से तीसरा उपन्यास निर्मल वर्मा लिखित `लाल टीन की छत` को हमने लिया है। अपने जीवन का अधिकांश समय युरोप जैसे विदेश में बीतानेवाले निर्मलजी के लिए यह स्वाभाविक था कि उनपर पाश्चात्य अस्तित्ववाद का प्रभाव पड़ा। उनके अन्य उपन्यासों की तरह उनके प्रस्तुत उपन्यास में भी अस्तित्ववादी दर्शन `काया` जैसी किशोरवयीन लडकी के माध्यम से दिखाया गया है, जो बचपन और जवानी के बीच की उम्र से गुजर रही है, जो न मानसिक तौर पर पूर्ण रूप से परिपक्व है और न अल्हड।

काया `लाल टीन की छत` वाले अपने मकान में अकेलेपन से घिरी रहती है। उसपर हर पल एक अज्ञात सा भय मँडराता रहता है। काया के छोटे भाई की भी हालत यहीं है। काया का अकेलापन उसमें अपने घर के प्रति एवं घर के लोगों यहां तक कि माँ के प्रति भी अजनबीपन की भावना को भर देता है। काया को अकेलापन किसी भीतरी बीमारी की तरह चिपका हुआ है। काया ही नहीं, काया के घर से संबंधित हर एक आदमी अकेलेपन में डूबा हुआ है।

काया अपने अकेलेपन का साक्षीदार अपने घर के आस-पास के पहाडियों को, वृक्षों को बनाना चाहती है। काया का घर शहर से दूर पहाडी वातावरण में अकेला है। काया अपने अकेलेपन के कारण घर का नौकर मँगतू, दाई माँ का लडका भोलू, उसका कजिन बीरू, चाचा की रखैल नथवाली औरत इनकी तरफ आकर्षित हो जाती है, लेकिन ये सभी स्वयं अकेलेपन से इतने पीडित हैं कि, काया को वे अपने लिए, अपने तरीके से इस्तेमाल करना चाहते हैं और अपना अकेलापन दूर करना चाहते हैं। इस दौरान आये अलग-अलग अनुभवों से काया को दुनियादारी समझ में आने लगती है , तब तक उसमें शारीरिक परिपक्वता भी आ जाती है। इस दौरान काया की जो मानसिक चढ़ाव-उतार की स्थिति है, उसका चित्रण निर्मलजीने बड़ी सूक्ष्मता से अस्तित्ववादी दृष्टिकोण को सामने रखकर किया है। काया का अकेलापन, उससे पनपी अजनबीपन एवं अलगाव की भावना, रिक्तता , शून्यता, मृत्युसंबंधी विचार, जीवन की निरर्थकता, आत्मनिर्वासन की भावना इन

अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों से गुजरती काया अपना अस्तित्व पाने के लिए संघर्ष करती है। अस्तित्वप्राप्ति के पश्चात उसके परिपक्व विचार अस्तित्ववादी दर्शन को प्रभावी कर देते हैं।

आलोच्य तीनों उपन्यासों में कथावस्तु का विषय गौण है। किसी भी उपन्यास को संरचित कथावस्तु नहीं है। हिन्दी के उपन्यासकारों ने विदेशी और भारतीय पात्र चुनकर उनमें वैचारिक टकराहट दिखायी है। युद्ध जन्य विध्वंस की पृष्ठभूमि पर अस्तित्ववाद का निर्माण होने के कारण उपन्यासकारों ने आलोच्य उपन्यासों में `बर्फ से दबे कठघेर में कैद पात्र` या फिर पहाडी प्रदेश के एकान्त में बसे पात्र` या फिर महानगरों की भीडभाड से संत्रस्त पात्रों को चुना है। प्रतीकात्मक वातावरण को चुनकर मानवीय संकट की स्थिति को उभारा है। पात्रों के कथापेकथन में रहस्यात्मकता पायी जाती है, जिससे पात्रों के मानसिक द्वंद्व का तथा मानसिक चढ़ाव-उतार का पता चलता है।

`लाल टीन की छत` का हर पात्र अकेलेपन के एहसास से पीडित है। काया, काया का छोटा भाई, जोसुआ, काया के पिताजी, काया की माँ, बीरू, नथवाली औरत आदि सभी पात्र अकेलेपन की पीडा से घिरे हैं। अकेलेपन को काटने के लिए लामा, गिन्नी, चाचाजी का बेटा बीरू के सानिध्य में जाना चाहती है। जंगल में अकेले भटकना चाहती है। काया के चाचाजी अपने अकेलेपन से छुटकारा पाने के लिए प्रथम पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरी शादी करते हैं। अपने पिताजी की दूसरी शादी से बीरू खुद को अकेलेपन की पीडा में ढ़ाल देता है। यहाँ का हर पात्र अकेलेपन की पीडा से घिरा है। लेखक ने काया के अकेलेपन को अन्य पात्रों में भरकर लेखक ने पूरे उपन्यास में अकेलेपन की पीडा को भरने का प्रयत्न किया है।

काया में अजनबीपन की पीडा उभरती है। उसके माँ का बच्चे को जन्म देते समय पहाडों में गुंजनेवाली उसकी चीख को सुनकर काया को सारे पहाड अजनबी लगते हैं। चाचा के घर का वातावरण, काया का अजनबीपन बढ़ाता है। गर्भवती माँ का परिवर्तित शरीर, लाल टीन की छत वाला मकान काया के अजनबीपन को बढ़ाता है।

काया की माँ का लामा से डर उसे बीच संत्रास बढ़ाता है। दाई माँ के बेटे का स्पर्श, माँ की प्रसववेदना की पीडा, खून से लथपथ यीसू की मूर्ति काया की पीडा को वृद्धिंगत करती है। बढ़ती उम्र की काया ईश्वर से जुड जाती है। अकेलेपन से छुटकारा पाने के लिए ईश्वर को पुकारती है। मृत्य में ईश्वर मानती है। स्वार्थी लोगों से दु:खी होती है। ट्रेन की दो पटरियों के बीच ईश्वर को देखती है। काया की यह स्थिति कीर्केगार्द और जास्पर्स की विचारधारा से मेल खाती है। यहाँ का हर पात्र मृत्यु को जीवन का अंतिम सत्य मानता है। काया के

मृत्यु विषयक विचार गिन्नी कुतिया की मृत्यु के उपरान्त शुरू होते हैं। लामा मृत्यु को जिन्दगी के तनावों से छुटकारा मानती है। छोटे को मृत्यु एक रहस्य लगता है।

प्रस्तुत उपन्यास क्लासिक लगता है। यह उपन्यास वय:सन्धि को पार करती हुअी लडकी के अपने अंत:करण से बाहर निकलने की कहानी है। यहाँ पात्रों की सूक्ष्म मनोदशा का चित्रण है। प्रस्तुत उपन्यास के पात्र आत्मकेन्द्रित और अपने ही दायरे में उलझे हुए दिखायी देते हैं। ये पात्र संवेदनाओं में बंद बने हैं। अस्तित्ववाद से प्रभावित उपन्यासों में यह एक अलग उपन्यास इसीलिए चुना है कि वय:सन्धि को पार करने की स्थिति में लडका या लडकी में यह चिंतनधारा कैसे कार्यरत होती है।

उक्त तीन आलोच्य उपन्यासों के सिवाय हमने उषा प्रियंवदा के `पचपन खंभे लाल दीवारें`-1961, `रूकोगी नहीं, ...राधिका?`-1967, मोहन राकेश के, `अन्धेरे बंद कमरें`-1961, `अंतराल`-1972, निर्मल वर्मा के `वे दिन`-1964, `एक चिथड़ा सुख`-1979, राजकमल चौधरी के `मछली मरी हुअी`-1966 और लक्ष्मीकान्त वर्मा के `टेराकोटा`-1971 इन उपन्यासों में अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों के सूत्रों को ढूँढने का प्रयत्न किया है। इन उपन्यासों में अकेलापन, अलगाव, अजनबीपन, ऊबकाई, संत्रस्तता, ईश्वर के प्रति आस्तिक-नास्तिक विचार, मृत्युविषयक विचार, घुटन, जीवन की निरर्थकता, वैयक्तिक स्वतंत्रता, अस्तित्व के लिए संघर्ष , टूटनशीलता, रिक्तता, डर की भावना आदि प्रवृत्तियों का समावेश इन उपन्यासों में हुआ है। इन उपन्यासों की नायिकाएँ ऊबकाई से ओतप्रोत हैं। वे स्वतंत्रता की मांग को प्रस्तुत करती है, फिर भी ये पारिवारिक बोझ से दबी हुअी हैं। `पचपन खंभे लाल दीवारें` की सुषमा और `टेराकोटा` की मिती इस ढ़ंग के नारी पात्र हैं। ये नायिकाएँ अभिशप्त परिस्थितियों से टकराती-टकराती स्वतंत्रता की चेतना से आसन्न लगती हैं। इस टकराहट में ये परिस्थितियों पर विजय पा नहीं सकती। ये नायिकाएँ भुगतती खूब है, परंतु समाजवादी नायिकाओं की भांति किसी विशिष्ट दशा का संकेत नहीं देती। इन उपन्यासों के परिवेश भी भिन्न-भिन्न और पात्रों की मानसिकता के अनुकूल प्रस्तुत किये हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के विध्वंस के कारण बिगडी हुअी मानसिकता, पति-पत्नी का तनाव, भौतिक वातावरण का उनके दांपत्य जीवन पर परिणाम को दिखाया है। इन उपन्यासों में देशी-विदेशी वातावरण का संमिश्रण देखेन को मिलता है। इन उपन्यासों की नायिकाएँ अनुक्रमें सुषमा, राधिका और मिती इन अस्तित्ववादी समस्याओं से गुजरती हैं। इनमें सुषमा थोडा कमजोर व्यक्तिमत्व है, तो राधिका और मिति में जिजिविषा कायम है। मोहन राकेश के `अन्धेरे बन्द कमरें`, में चित्रित दांपत्य हरबंस और निलिमा इन अस्तित्ववादी संकटों से पीडित है,

कारण है, दोनों की मूल्यों के बारे में मतभिन्नता। `अन्तराल` में राकेशजी ने स्त्री-पुरूषों के संबंधों का अंतराल अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों को लेकर स्पष्ट किया है। `वे दिन` उपन्यास का वातावरण तो नितांत विदेशी है। परिवार-विघटन की पाश्चात्य समस्या को अस्तित्ववादी विचारधारा को प्रस्तुत उपन्यास में आधार बनाया गया है। निर्मल जी के `एक चिथडा सुख` उपन्यास के पात्र ऐसे ही सुख के लिए पहचान में भटक रहें हैं। `मछली मरी हुई` इस राजकमल चौधरी लिखित उपन्यास के स्त्री-पात्र अपने अकेलेपन के कारण `लेस्बियां` जैसे संबंधों का शिकार बने हुए हैं, जो एक सामाजिक समस्या है। इस समस्या का चित्रण दीपा मेहता निर्मित `फायर` फिल्मद्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो आजकल काफी विवाद का विषय बनी हुअी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि, इन उपन्यासों का हर पात्र किसी-न-किसी रूप में अपना अस्तित्व सुरक्षित रखना चाहता है। उपन्यास लेखनशैली की कलात्मकता से इन लेखकों ने मूलत: पाश्चात्य संस्कारों में पले अस्तित्ववाद को भारतीय परिवेश पर थोंपने के प्रयास किये हैं, जो पाश्चात्य भौतिकता के आकर्षण का शिकार बननेवाले हमारे भारतीय संस्कृति में जागृति लाने का काम कर सकते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि, अस्तित्ववाद से प्रभावित उपन्यासों में मानवीय स्थिति के चित्रण में जितना गहराई से चिंतन किया है, उतना मानवीय स्वातंत्र्य को अक्षुण्ण बनानेवाली संकल्प-शक्ति के बारे में नहीं सोचा है। अस्तित्ववाद से प्रभावित उपन्यासों में हमें मानवमन की वृत्तियों से परिचित कराया है। इन उपन्यासों में अवस्था से ऊपर उठने का जीवन-बोध कम मिलता है। अस्तित्ववाद की एक अधूरी यात्रा ये उपन्यास लगते हैं। भारतीय परिवेश में प्राप्त अस्तित्ववाद से प्रभावित प्रवृत्तियों का अंकन इन उपन्यासों के माध्य से किया है। इन उपन्यासों की मानसिकता का चित्रण चरित्रों के सामाजिक, सांस्कृतिक, संदर्भों में करने की विशेष प्रवृत्ति होने के कारण, उनकी मानसिक अवस्थाएँ अधिक विश्वसनीय लगती हैं। ये उपन्यास साठोत्तरी कालखंड में महानगरीय जनजीवन से जुडे हुए लगते हैं। सन साठ के बाद पनपी हुअी अस्तित्ववादी चेतना ने मनोवैज्ञानिक औपन्यासिक धारा को अपने में समेट लिया है। परिणामस्वरूप मनुष्य के मन का अधिक जटिल रूप सामने आया है।

अस्तित्ववाद से प्रभावित हिन्दी के आलोच्य उपन्यास तथा अन्य अस्तित्ववादी उपन्यासों के मूल्यांकन के दौरान जो भी निष्कर्ष हाथ लगें उन्हें उपसंहार में देने का हमने प्रयत्न किया है। अंत में हमें लगता है कि, यह अस्तित्ववादी चिंतनधारा भारतीय परिवेश में अभी तक अधिक मात्रा में नहीं पनप उठी है, इसीलिए हिन्दी के अस्तित्ववाद से प्रभावित उपन्यास एक अधूरी यात्रा लगते हैं।

****